ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 2, February 2019

आदिवासी कथा साहित्य में नारी चित्रण

Dr. Anita Singh

Assistant Professor, Dept. of Hindi, DBS College, Govind Nagar, Kanpur, Uttar Pradesh, India

सार

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में परम्परागत रचना प्रक्रिया से इतर विमर्शों और हस्तक्षेपों का दौर शुरू हुआ, जिसमें समाज के उन वर्गों की आवाज़ को स्थान मिला जिनको अभी तक 'स्वानुभूति' व्यक्त करने का मौक़ा नहीं मिला था जबकि उनकी अनुभूति दर्दनाक थी; यही कारण है कि वह दलित, आदिवासी व स्त्री समाज के द्वारा आत्मकथात्मक साहित्य के रूप में आक्रोश के साथ व्यक्त की गई। साहित्य में इन शोषित वर्गों द्वारा एक आन्दोलन के रूप में कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, संस्मरण जैसी विधाओं में रचना कर्म शुरू किया गया जो 'साहित्यिक न्याय' के लिए ज़रूरी भी था क्योंकि इससे साहित्य में हाशिये के वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित होने लगी।

परिचय

अस्मितावादी साहित्यकार रचना में प्रामाणिकता को सर्वोपरि मानते हैं इसीलिए उनकी कृति में 'देखे गये यथार्थ' की तुलना में 'भोगे गए यथार्थ' को तथा शिल्प की बजाय संवेदनात्मक पक्ष को अधिक महत्त्व मिला। रोहिणी अग्रवाल लिखती है- "बेशक सृजन के समय रचनाकार सृष्टा होता है, लेकिन उसके सृष्टा के भीतर बैठा बोध उसके वर्ग, धर्म, लिंग और वय से निर्देशित-प्रभावित होता हुआ उसे जो दृष्टि और संवेदना देता है, वही उसके लेखकीय व्यक्तित्व का सृजन करता है और रचना में प्रतिफलित होता है।" आदिवासी साहित्य में स्त्री विमर्श ग़ैर-आदिवासियों द्वारा चलाए गए स्त्री विमर्श से इस मायने में अलग है कि वे समन्वय की नहीं संघर्ष की बात करते हैं, क्योंकि उनके साथ अन्याय हुआ है। इसलिए ये उस संघर्ष की बात करते हैं जो उनको वर्ण व्यवस्था से मुक्ति देगा, उनको ज्ञान और सत्ता की प्रक्रिया से जोड़ेगा तथा एक बेहतर समाज के निर्माण में मदद करेगा। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है, जो पारम्परिक स्त्री साहित्य से आदिवासी साहित्य को अलग करती है।[1]

अस्मितावादी साहित्य समाज के ठोस यथार्थ को अभिव्यक्त करता है इसीलिए इस साहित्य में संवेदना की अथाह गहराई है, किंतु व्यापकता कम है। स्वानुभूति की अडिगता से 'आत्म' केंद्र में रहता है, इसीलिए इस तरह के साहित्य में संवेदना की संकीर्णता आनुषंगिक परिणाम के रूप में अनचाहे ही आ जाती है। यह बात हिंदी साहित्य जगत में लगभग पिछले तीन दशकों से चर्चा के केंद्र में रहे स्त्रीवादी साहित्य पर भी लागू होती है। आज स्त्री हर विषय पर लिख रही है- स्त्री विषयक शोधकार्यों की कमी नहीं है। औरत की कहानी का अंत नहीं है और औरत पर लिखे गए हज़ारों विमर्श हैं। दुनिया के हर देश में, हर कोने में औरत अपने बारे में बोल रही है। स्त्री बौद्धिकता दार्शनिकों, राजनेताओं से लेकर धर्मगुरुओं तक, उनके द्वारा संस्थापित सिद्धान्तों, मतों और पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था की बखिया उधेड़ रही है।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 2, February 2019

भारतीय समाज में स्त्रियों की वर्तमान स्थिति को निर्धारित करने में धर्मग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। ऑड्रे लोर्ड आदिवासी स्त्रियों की उपेक्षा करने वाले धर्मग्रंथों, नीति संहिताओं और स्त्रियों के लिए चुड़ैल और डाकन जैसी उपमाओं का विरोध करते हुए अपनी कृति 'एक स्त्री का कहन' में लिखती है-

"मेरी कोई रुचि नहीं है
न अपने अवतार में
और न उन धर्मशास्त्रों में
जहाँ मैं उम्रविहीन और अविकसित हूँ
और जिसके लिए अभी तक तड़प रही हूँ
मेरी बहनें
जिन्हें लोग चुड़ैल कहते हैं
उदास मातमी क्षणों में
मुझे अपनी छाती से लगाए रखती हैं
बिल्कुल माँ की तरह।"

आदिवासी लेखन के द्वारा स्त्री के अस्तित्व, उसके अधिकारों के लिए द्वार खोले गए हैं। आदिवासी साहित्य मुख्यधारा की संस्कृति के दायरे से बाहर रहकर आदिवासियों के जीवन को व्यक्त करने वाला, उनकी संस्कृति,[2] परम्पराएँ, संघर्ष, इतिहास को एक स्तर से ऊपर उठाने वाला साहित्य है। इन साहित्यकारों ने आदिवासियों के उन प्रश्नों की तरफ़ ध्यान देने वाले साहित्य का निर्माण किया है, जो आदिवासियों में प्रेरणा, जागरुकता, अपने हक़ के लिए लड़ने की शक्ति दे सके। आदिवासी स्त्री ने अपनी अंधश्रद्धा, परम्पराओं, रूढ़ियों, चुल्हा और बच्चों तक सीमित न रहने की कोशिश की है। ये साहित्य पुरुषों की स्त्री विरोधी मानसिकता को बदलने में समर्थ है।

आदिवासी समाज के सामने विस्थापन की सबसे बड़ी समस्या है। वे यह समस्या पूर्वजों से झेलते आ रहे हैं। कई बार उन्होंने प्रतिकार भी किया जिनमें से कुछ भारतीय इतिहास में संताल विद्रोह और मुंडा विद्रोह के रूप में दर्ज है किन्तु ऐसे असंख्य संघर्ष किताबों की पहुँच से बाहर हैं। आधुनिक काल में तथाकथित मुख्यधारा के लोगों ने उनका तिरस्कार किया, उनको बंदरों सा नचाया, उनकी नंगी तस्वीरें खिंची। उनको उन्हीं की ज़मीन से बेदख़ल किया गया। सरकारी क़ानून और परियोजनाओं, विदेशी कंपनियों, पुलिस और नक्सलवाद ने उन्हें और घने जंगल में जाने को मजबूर किया। विस्थापन एक ऐसी समस्या है जो मनुष्य को सांस्कृतिक, मानसिक और भौगोलिक तौर पर बदल देती है। वंदना टेटे लिखती है- "विस्थापन, पलायन और औद्योगिकरण की सबसे ज़्यादा मार आदिवासी महिलाओं को ही भोगनी पड़ी है। इन जगहों पर चाहे वह आदिवासी समाज की महिला हो या ग़ैर-आदिवासी समाज की, दिहाड़ी मजदूर 'रेजा' हो या फिर किसी सरकारी अथवा गैर-सरकारी विभाग में कार्यरत मध्यवर्गीय महिला, दोनों ही समान रूप से उत्पीड़ित हैं।"[3]

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 2, February 2019

अब हमारे सामने प्रश्न उठता है कि आदिवासी साहित्य लेखन ने समाज को किस तरह प्रभावित किया, क्या इस तरह के लेखन से पीड़ित, उपेक्षित स्त्री को उसके मानवाधिकार मिल रहे हैं? क्या आदिवासी स्त्रियों के शोषण की घटनाएँ रुकी हैं? विषमतावादी भारतीय समाज में जातिभेद, ऊँच-नीच की भावनाएँ क्या अब नहीं हैं? क्या ये स्त्रियाँ घर के भीतर सम्मानजनक स्थिति प्राप्त कर पाई हैं? हम कह सकते हैं कि आदिवासी लेखन के द्वारा स्त्री के अस्तित्व, उसके अधिकारों के लिए द्वार खोले गए हैं। आदिवासी साहित्य तथाकथित मुख्यधारा की संस्कृति के दायरे से बाहर रहकर आदिवासियों के जीवन को व्यक्त करने वाला, उनकी संस्कृति, परम्पराएँ, संघर्ष, इतिहास को एक स्तर से ऊपर उठने वाला साहित्य है। आदिवासी स्त्री को अपनी अंधश्रद्धा, परम्पराओं, रूढ़ियों, चूल्हा और बच्चों तक सीमित न रखने की कोशिश की है। ये साहित्य पुरुषों की स्त्री विरोधी मानसिकता को बदलने में समर्थ है।

विचार-विमर्श

स्त्री विमर्शकार सम्पूर्ण भारतीय स्त्री के प्रतिनिधित्व का दावा करती है किन्तु यह पूर्णत: सत्य नहीं है। आज भी हिंदी स्त्री विमर्श की परिधि से समाज का बड़ा तबक़ा बाहर है। विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक बाधाओं के कारण समाज की मुख्यधारा से कटे हुए असंख्य स्त्री समूह साहित्य व सत्ता के गलियारों से कोसों दूर हैं, आदिवासी स्त्री भी उनमें से एक है। हैरत की बात यह है कि समाज के झंडाबरदार व नीति निर्माता इससे अनभिज्ञ व बेपरवाह हैं। वे यह मानने को कतई तैयार नहीं हैं कि उनकी नज़र व नीति की सीमा से परे भी कुछ ऐसा है, जिसके महत्त्व को कम नहीं आंका जा सकता। आदिवासी स्त्री समाज जाति से हीन और ग़रीब होने के कारण सामाजिक और आर्थिक जीवन स्थितियों के साथ उनका इतिहास और उनकी जीवन-शैली एक आम भारतीय स्त्री से भिन्न है। अत: स्त्री-मुक्ति की चर्चा करते ही उनके प्रतिनिधित्व से संबंधित सवाल उठ खड़े होते हैं। स्त्री साहित्य में दलित, आदिवासी और मुस्लिम स्त्रियों पर बहुत कम लिखा गया है जबकि सही मायने में ये स्त्रियाँ समाज के दोहरे शोषण से जूझ रही हैं।[4]

आदिवासी विमर्श आज़ादी के बाद प्रकाश में आए दलित और स्त्री विमर्श के बाद का विमर्श है। हिंदी में आदिवासी विमर्श सबसे नया और उभरता हुआ विमर्श है। आदिवासी विमर्श पर बहुत कम लिखा गया है और जो लिखा भी गया है वो मात्र रिसर्च की दुनिया तक सिमट कर रह गया है; ऐसे में आदिवासी स्त्री पर साहित्य की क्या स्थिति है? इसका अंदाज़ा हम लगा सकते हैं। आदिवासी स्त्री संघर्ष के समर्थ संताली कथाकार के.सी. टुडू लिखते हैं- "हिन्दी साहित्य में आदिवासी समाज और उनका जीवन अब तक उपेक्षित है। हमारे हिन्दी साहित्यकारों का ध्यान भारतीय समाज के इस सबसे उत्पीड़ित समुदायों की ओर लगभग नहीं के बराबर है।"

साहित्य में जहाँ कहीं आदिवासी स्त्री का चित्रण हुआ है वहाँ हम आदिवासी स्त्री को मात्र स्वछन्द यौन की वस्तु, लुटी-पिटी और क्षत-विक्षत रूप में चित्रित किया हुआ ही देखते हैं। इससे आहत होकर डॉ. वीपी केशरी लिखते हैं- "लोगों ने रोमांटिक होकर और गिद्ध दृष्टि से आदिवासियों पर ज़्यादा लिखा है। अनेक बाहरी लेखकों ने तो हमारा अहित करने वालों को उद्धारक और हमारे नायकों को अपराधी चित्रित किया है। उनका लेखन हमारी औरतों के बलात्कार के बिना उत्कृष्ट और कलात्मक नहीं

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 2, February 2019

होता।"[3] इसी सन्दर्भ में वंदना टेटे लिखती है- "भारतीय साहित्य में आदिवासी महिलाएँ परदेशी के प्रेम में देह सौंपती, दाई, आया, सेविका आदि के रूप में मार खाती, बलात्कार भोगती हुई ही दिखाई देती हैं। अस्मिता, स्वशासन और आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए संघर्ष करती हुई आदिवासी स्त्रियाँ साहित्य और फ़िल्मों में एकसिरे से ग़ायब हैं।"[4] दलित साहित्य में भी स्त्री के सवालों को पीछे छोड़ा गया है इसी कारण अलग से दलित स्त्री विमर्श की आवश्यकता महसूस हुई और यही स्थिति वर्तमान में आदिवासी साहित्य में स्त्री की है। आज जब सम्पूर्ण विश्व में स्त्री पूर्ण मनुष्य का दर्जा प्राप्त करने की जद्दोजेहद में लगी हुई है और वर्तमान समय में हमारा देश राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया से गुज़र रहा है, ऐसे में समाज के किसी एक वर्ग के प्रति अपरिचय स्थिति घातक साबित हो सकती है।

आदिवासी स्त्री विमर्श से एक ठोस यथार्थ पाठक के सामने आया लेकिन यह साहित्य केवल उच्च शिक्षित और साहित्य प्रेमी लोगों तक ही पहुँच पाया है जबकि भारत की 70 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है और गाँवों की 25 प्रतिशत आबादी अशिक्षित होने के कारण साहित्य की पहुँच से बहुत दूर है, जबकि इस तरह के प्रामाणिक साहित्य की सबसे ज़्यादा आवश्यकता उन्हीं लोगों को है और मुख्यतःउन्हीं लोगों के हितों को दृष्टि में रखकर आदिवासी साहित्य लिखा गया है। मृणाल पाण्डे लिखती है कि- "ताज़ी सदी में भूमंडलीकृत बाज़ार-व्यवस्था ने जो नए रोज़गार, आई.टी. तबक़े या आउट सोर्सिंग द्वारा पैदा किए हैं, उनके लिए कुशल, सुशिक्षित और शहरी होना ज़रूरी है, जो कि अधिकतर महिला कामगार नहीं है। नतीजतन वे नितान्त घटिया, स्वास्थ्य के लिए असुरक्षित और कम आमदनी वाले धन्धे अपनाने को मजबूर हो रही हैं।" मेरे हिसाब से साहित्य कला का व्यक्ति के अवचेतन मन पर गहरा असर होता है लेकिन साहित्य की अपनी एक सीमा है। साहित्य का प्रसार व्यापक स्तर पर हो सके इसके लिए आवश्यक है कि साहित्य को कला की अन्य विधाओं जैसे- नुक्कड़ नाटक, श्रव्य-दृश्य माध्यम, टेलीविजन पर धारावाहिक के माध्यम से आम जनता तक पहुँचाया जाना चाहिए।[5]

अस्मितावादी स्त्री साहित्य का व्यापक प्रभाव लोगों पर पड़े इसके लिए आवश्यक है कि इस तरह का साहित्य स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम में लागू किया जाना चाहिए क्योंकि बहुत कम लोग उच्च शिक्षा ग्रहण कर पाने में सक्षम होते हैं। सरकार भी अनेक योजनाओं के माध्यम से समानता लाने की कोशिश कर रही है लेकिन जो नीतियाँ बन रही हैं उनका क्रियान्वयन सुनियोजित ढंग से हो तभी सुधार सम्भव है, वरना ये नीतियाँ काग़ज़ों में सिमटकर रह जायेंगी।

परिणाम

आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज व्यवस्था के इस कमज़ोर तबक़े से संबंधित साहित्य का विश्लेषण करके जाना जा सके कि इस वर्ग का वास्तविक जीवन कैसा है? जैसा है, वैसा ही क्यों है? सामाजिक भागीदारी कम होने के कारण आदिवासी स्त्री भारतीय समाज की मुख्यधारा से कम जुड़ पायी है इसीलिए इस वर्ग को लेकर समाज में अनेक भ्रांतियाँ भी है, जिनका आधार काल्पनिक व अप्रामाणिक है लेकिन आदिवासी स्त्री संबंधित लेखन से ऐसी भ्रांतियाँ प्रामाणिकता के साथ दूर हो रही हैं।

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 2, February 2019

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य को समाज का दर्पण कहा जिसका निहितार्थ है कि साहित्यकार समाज का पथ प्रदर्शक भी होता है। वह अपनी सूक्ष्म दृष्टि और संवेदनशीलता के चलते समाज में परिवर्तन की सुगबुगाहट व उसकी दिशा का पूर्वानुमान कर लेता है। आदिवासी स्त्रियों में भी अपने अधिकारों को लेकर बोध उत्पन्न हो रहा है किन्तु यह सुगबुगाहट अपने शुरूआती दौर में है, इसीलिए इस संघर्ष की दशा व दिशा को लेकर द्वन्द्व और अस्पष्टता भी है। कोई भी रचना शब्दों के झरोखे से तब झाँकती है, जब वह भीतर ही भीतर बहुत कुछ संघर्ष कर चुकी होती है। आदिवासी साहित्य में स्त्री प्रश्न इसी तथ्य को सार्थक करते हैं। आदिवासी स्त्री साहित्य आदिवासी स्त्री द्वारा भोगे हुए खुरदरे यथार्थ की सच्चाई को बिना किसी लाग लपेट के बयान करनेवाला साहित्य है। इन्होंने जीवन के तीखे अनुभव को उसी रूप में अभिव्यक्त किया जिस रूप में जिया है। इस अर्थ में इनका साहित्य जीवंत साहित्य कहा जा सकता है। इस साहित्य में उनका जीवन यथार्थ दिखाई देता है।

आरंभिक और ज़्यादातर आदिवासी साहित्य लिखित रूप में न होकर गीतों तथा लौकिक कथाओं के रूप में रहा है। आदिवासी समाज में गायन व मौखिक परम्परा पर बल होने के कारण अन्य विमर्शों से विपरीत अधिकांश साहित्य गद्य रूप में कम और पद्यात्मक रूप में अधिक सामने आता है। आदिवासी स्त्री जीवन के संघर्ष को लेकर रमणिका गुप्ता, महाश्वेता देवी, निर्मला पुतुल, डॉ. मंजू ज्योत्स्ना, सरिता बड़ाइक, वन्दना टेटे, रोज केरकेट्टा, इरोम शर्मिला, जनार्दन गोंड, ऑड्रे लोर्ड आदि साहित्यकारों ने आवाज़ दी है। इन साहित्यकारों ने अपनी कविताओं और साहित्य के माध्यम से अपना भोगा हुआ यथार्थ और साथ ही अपने समाज के सामाजिक, वैयक्तिक जीवन-संघर्ष की समस्याओं को व्यक्त किया है। आदिवासी कविताओं में विभिन्न सामाजिक विद्रोह, नारी का जीवन-संघर्ष, विस्थापन, अस्तित्व की समस्या और शिक्षा जैसी समस्याएँ प्रमुख रूप से देखी जाती हैं। आदिवासी स्त्रियों ने पहले तो अपने हक़ और अधिकार के लिए पुरुष के साथ मिलकर समाज और शासकों का सामना किया और अब अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए न केवल समाज में बल्कि अपने घर में ही संघर्ष करने को मजबूर हैं।[6]

डॉ. मंजू ज्योत्स्ना 'ब्याह' नामक कविता के माध्यम से एक आदिवासी स्त्री द्वारा अपने माता-पिता का घर छोड़ दूसरे के घर जाने के बाद की पीड़ा को व्यक्त करती है। ससुराल में लड़कियों के साथ शोषण, अत्याचार, दहेज के लिए जलाना, खेत और घर को सँभालना आदि अनेक समस्यायों से जूझती बुधनी, मंगरी, सोमरी जैसी पीड़ित सहेलियों के उदाहरण देखे हैं। वह पुरुष समाज द्वारा किए जा रहे अत्याचारों का विरोध करती है जो स्त्री को सिर्फ़ चुल्हा और बिस्तर के माफ़िक़ समझता है। वह कहती है-

करना
मैंने देखी है-बुधनी की जिंदगी
बाल बच्चे सँभाल खेत में खटती है
उसका मर्द साँझ, सवेरे, रात
मारता है कितना।"

भारतीय स्त्री जो सदियों से बेड़ियों में बंद हैं उन सबको लाँघकर स्वछन्द रूप से विचरण करना चाहती है। आज स्त्री की मंशा यही है कि उसे भी वो सब अधिकार मिले जो एक पुरुष को प्राप्त है, उसे भी मानवी का दर्जा देकर स्वतंत्र रूप से अपनी

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 2, February 2019

ज़िन्दगी जीने का अधिकार मिले,[9] इसी स्त्रियों के दर्द को व्यक्त करते हुए इरोम शर्मिला ने 'मैंने लिया है जन्म एक परिंदे का' में लिखती है-

"पूरा का पूरा खोल दो क़ैदखाने का दरवाज़ा
नहीं जाऊँगी मैं किसी और रास्ते
कृपया खोल दो काँटों की बेड़ियाँ
मत लगाओ इल्ज़ाम मुझ पर
सिर्फ़ इसलिए
कि मैंने लिया है जन्म एक परिंदे का "

स्त्रियों के प्रति पुरुषों के दृष्टिकोण पर आक्षेप करते हुए निर्मला पुतुल ने 'हमें चाहिए बेख़ौफ़ आज़ादी' कृति में लिखा है-

"तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के
मन की गाँठें खोलकर
कभी पढ़ा है तुमने
उसके भीतर का खौलता इतिहास....?
अगर नहीं
तो जानते क्या हो तुम
रसोई और बिस्तर के
गणित से परे
एक स्त्री के बारे में....?"

आदिवासी स्त्री भारतीय समाज का एक ऐसा वर्ग जिसके लिए स्वतंत्रता, समानता और न्याय जैसी आधुनिक लोकतांत्रिक अवधारणाएँ कल्पनालोक के विषय हैं। हिंदी साहित्य के संसार में स्त्री और दलित विमर्श जिस प्रवृत्ति के साथ आगे आया है उससे आदिवासी साहित्य भिन्न है। शिक्षा, आधुनिकता व भौतिकता से दूर होने के कारण आदिवासी स्त्री परम्परागत स्त्री की तरह ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था के साये में जीने को अभिशप्त है। आदिवासी स्त्री वर्ग का भारतीय समाज व भारतीय स्त्री के व्यापक ढाँचे में समग्रता के साथ विश्लेषण करके इसके जीवन यथार्थ व चुनौतियों को नहीं समझा जा सकता क्योंकि इस वर्ग की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन परिस्थितियाँ व चुनौतियाँ बहुसंख्यक समाज से भिन्न हैं और इसके लिए आवश्यक है कि उनके बीच जाकर उनकी स्थिति का विश्लेषण किया जाए।[7]

आदिवासी समाज का बड़ा तबक़ा वर्तमान दौर में भी मुख्यधारा से कटा हुआ है इसलिए इस वर्ग में कन्याभ्रूण हत्या, कन्यावध जैसी समस्या तुलनात्मक रूप से कम नज़र आती है। नवीनतम जनांकिकीय आँकड़ों में देश के औसत लिंगानुपात की तुलना में जनजातीय वर्ग में लिंगानुपात बेहतर है। वहीं मुख्यधारा के समाज में शिक्षा के चलते क़ानून के प्रति जागरूकता तथा

IJIRSET

ISSN(Online): 2319-8753
ISSN (Print): 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(A High Impact Factor, Monthly, Peer Reviewed Journal)

Visit: www.ijirset.com

Vol. 8, Issue 2, February 2019

अनावश्यक गोपनीयता के अभाव के कारण डायन प्रथा, जादू-टोना जैसे अंधविश्वासों में कमी आई है किन्तु आदिवासी समूहों में ऐसी घटनाएँ बहुतायत से देखी जा सकती हैं। मीणा और भील जनजातियों में स्त्रियों पर 'डाकन' होने का आरोप लगा कर मार डालने की कुप्रथा व्याप्त है, 'अंधविश्वास' एवं 'एक बित्ता ज़मीन' कहानी वर्तमान में आदिवासी समाज में व्याप्त डायन समस्या को सामने रखती है। हालाँकि सरकारी हस्तक्षेप के कारण पिछले कुछ समय से इस तरह की अमानवीय घटनाओं में कमी आई है।[8]

निष्कर्ष

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि आदिवासी साहित्य की आवश्यकता तब हुई जब तथाकथित सभ्य समाज ने तुच्छ स्वार्थों के लिए उनको मानवोचित अधिकारों से वंचित रखा था और इन्हीं अधिकार व समता प्राप्ति की चाह के चलते आदिवासी विमर्श ने साहित्य जगत में जगह बनायी। इसी अहसास के साथ उनकी क़लम से लेखन का प्रस्फुटन हो रहा है। इस लेखन का महत्त्व इस वजह से भी है कि सदियों से उपेक्षित एक बड़ी आबादी के जीवन मूल्य, जीवन शैली और अस्तित्व का संघर्ष पूरी दुनिया के सामने बिना किसी मध्यस्थता के प्रत्यक्ष और वास्तविक रूप में सामने आ रहा है। आदिवासी समाज के भीतर की दुनिया में भी स्त्री की स्थिति शोचनीय है। आदिवासी स्त्री तथाकथित परम्पराओं, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों की शोषणकारी व्यवस्था में जकड़ी हुई है, इसीलिए उनको अस्मिता संरक्षण के नाम पर आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों से वंचित नहीं रखा जा सकता है। इन्हीं सब पहलूओं को मद्देनज़र रखते हुए साहित्य में आदिवासी स्त्री की उपस्थिति का विश्लेषण करते हैं तो अनेक नवीन किन्तु महत्त्वपूर्ण पहलू देखे जा सकते हैं जो भारतीय संस्कृति की सतरंगी विशेषताओं के साथ स्याह पक्ष को भी उभारते हैं।[10]

संदर्भ

1. अग्रवाल, रोहिणी : समकालीन हिन्दी उपन्यास और दिकू समाज का आदिवासी चिंतन, कथाक्रम, अक्तूबर-दिसम्बर 2011, पृष्ठ 44
2. टेटे, वंदना : आदिवासी साहित्य परम्परा और प्रयोजन, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची (झारखंड), संस्करण : 2013, पृष्ठ 49
3. वही, पृष्ठ 71
4. वही, पृष्ठ 72
5. गुप्ता, रमणिका : आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2008, पृष्ठ 98
6. मीणा, गंगा सहाय : आदिवासी साहित्य, आदिवासी दर्शन और समकालीन साहित्य सृजन त्रैमासिकी, अप्रेल-जून 2015, अंक : 2, पृष्ठ 18
7. सं. कविता कृष्णन, जुलियन विगो, रणेंद्र, सविता सिंह : हमें चाहिए बेख़ौफ़ आजादी, प्रकाशक: सांस्कृतिक संकुल जन संस्कृति मंच, बैक कवर पेज
8. मीणा, गंगा सहाय : आदिवासी साहित्य, आदिवासी दर्शन और समकालीन साहित्य सृजन त्रैमासिकी, अप्रेल-जून 2015, अंक : 2, बैक कवर पेज
9. टेटे, वंदना : आदिवासी साहित्य परम्परा और प्रयोजन, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची (झारखंड), संस्करण : 2013, पृष्ठ 75
10. पाण्डे, मृणाल : जहाँ औरतें गढ़ी जाती हैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, दूसरी संस्करण : 2008, पृष्ठ 62